मुख्यधारा के बरक्स हाशिए का समाज: पूर्वोत्तर

अभिषेक अवतंस

अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा-०५

abhiavtans@gmail.com

अंग्रेज़ी शासनकाल से ही भारत का पूर्वोत्तर प्रदेश (अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम) अस्थिरता का मंच रहा है. अंग्रेज़ी औपनिवेशिक शासन ने शुरू से ही पूर्वोत्तर को शेष भारत से अलग कर देखा था. 1873 का बंगाल ईस्टर्न फ्रन्टियर एक्ट इसी विभाजन की पहली कड़ी थी. स्वतंत्रता के बाद इसी पृथक्तावाद के इतिहास के साथ राष्ट्रीय एकीकरण की हमारी विफलताओं ने पूर्वोत्तर में अलगाववाद की लपटें भड़काईं हैं. आज पूर्वोत्तर के अलगाववादी आंदोलन और उससे उपजी विसंगतियाँ भारतीय जनमानस के लिए चिंता का विषय है. दरअसल पूर्वोत्तर भारत का समाज भी इस अस्थिरता की पीड़ा से ओतप्रोत है. पूर्वोत्तर में हो रही इस तरह की घटनाओं की तह में जाएँ तो हम पाएंगे कि इस स्थिति के लिए मुख्यधारा का समाज भी काफ़ी हद तक जिम्मेदार है. शेष भारत में आमतौर पर इन राज्यों के निवासियों को दोयम दर्जे का नागरिक या एक विदेशी पर्यटक के रुप में देखा जाता है. उत्तर या दक्षिण भारत में राह चलते किसी नागालैंड या मिज़ोरम वासी से यह पूछा जाना कि वह किस देश का है, रोजमर्रा की बात है. आम जनता ने तो प्राय: इन राज्यों का सही-सही नाम भी नहीं सुना होता, सामाजिक-सांस्कृतिक ज्ञान से परिचय तो दूर की बात है. अपने ही देश में लोगों का यह बेगानापन किसे निराश नहीं करेगा.

इन राज्यों मे हर प्रकार के काम-धंधे के लिए जाने वाले बाहरी व्यक्तियों ने इस प्रदेश के विकास और वहाँ शिक्षा के प्रसार में निस्संदेह महत्वपूर्ण योगदान दिया है. दूसरी तरफ उन्होंने भ्रष्टाचार और अनैतिक मूल्यों से भी स्थानीय जनता को सुपरिचित करवाया है. प्रदेश के विकास की मद में आने वाले सरकारी व गैरसरकारी फंड का कैसे दुरुपयोग करना है, यह उन्हें मुख्यधारा के लोगों ने ही सिखाया है. आज जब नागालैंड या मणिपुर जैसे राज्यों मे भ्रष्ट और मौकापरस्त लोगों के एक स्थानीय कुलीन वर्ग का उदय हो चुका है, जो हमारे ही

सिखाए रास्तों पर चलना चाहता है, तब हमें समस्या को नए सिरे से समझने का प्रयास करना चाहिए.

भूमिपुत्रों के इस आभिजात्य वर्ग के उदय से अब पूर्वोत्तर के समाज का सामाजिक और आर्थिक साम्यता का वह पारंपरिक मॉडल बिखरने लगा है जो सदियों से इस समाज की प्रधान विशिष्टता था. अमीरों और गरीबों के बीच बढ़ती असमानता अब विकराल रूप धारण कर रही है. इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि आने वाले वर्षो में पूर्वोत्तर के राज्यों में सामाजिक संघर्ष और बढ़ेगा. शिलांग (मेघालय) के भीतरी इलाको में बनी स्थानीय निर्धनों की नई मलिन बस्तियाँ इसी प्रक्रिया की सूचक हैं. दूसरी ओर नागालैंड की आर्थिक राजधानी दीमापुर में अधिकांश बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठान सरकारी अधिकारियों और अलगाववादियों के सहयोग से चंद स्थानीय लोगों द्वारा ही नियंत्रित किये जा रहे हैं. नागालैंड के कोहिमा या माओ जिलों के सुदूर क्षेत्रों में रहने वालों के लिये शायद यह सामाजिक परिवर्तन अभी भी अछूता होगा, क्योंकि उनमें से अधिकांश पारंपरिक सहज जीवन को ही बेहतर पाते हैं.

दूसरी ओर शहरों और गाँवों में बिना काम किए धन कमाने की संस्कृति का विस्तार तेजी से हो रहा है. आमतौर पर सरकारी फंड के निर्बाध प्रवाह ने लोगों को इतना निकम्मा बना दिया है कि आज सरकारी पैसे से हो रहे सार्वजनिक निर्माण कार्यों में श्रम करना हीनता का पर्याय बन गया है. यही वजह है कि मणिपुर में सड़क बनाने के लिए बिहार से निरीह मजदूर बुलाए जा रहे हैं. इसका एक अपवाद मिज़ोरम राज्य है जहाँ अधिकांशत: स्थानीय लोगों द्वारा ही ये श्रम-साध्य कार्य किए जा रहे हैं. शायद यही वजह है कि पूर्वोत्तर के अंदर मिज़ोरम की सड़को का विकास ग्राफ सबसे ऊपर है.

भारतीय राजनीति का हॉलमार्क बन चुकी वोटों की खरीद-फरोख्त और उम्मीदवारी की बोली लगाने की कुप्रथा ने अपना खाता अब पूर्वोत्तर की लोकतांत्रिक राजनीति में भी खोल दिया है. इसके नवीनतम उदाहरण हमें इस वर्ष हुए प्रदेश के विधानसभा चुनावों में देखने को मिले. संभवत: मुद्रा विनिमय ने ही राष्ट्रीय जनता दल जैसी विशुद्ध क्षेत्रीय पार्टी की तरफ़ नागालैंड विधानसभा चुनाव के उम्मीदवारों को आकर्षित किया होगा. साथ ही सरकारी संसाधनों का चुनाव के दौरान दुरुपयोग आम बात है.

पूर्वोत्तर में व्याप्त हिंसक माहौल से सिर्फ दूसरे राज्यों से आकर वहाँ बसे व्यक्ति ही नहीं परन्तु वहाँ की आम जनता भी भयभीत है. यही कारण है कि इन राज्यों की अधिकांश युवा आबादी

वहाँ से पलायन कर देश के महानगरों में सुरक्षित महसूस करती है. यहाँ काबिले गौर यह तथ्य भी है कि वर्तमान में पूर्वोत्तर में रोजगार के मात्र दो ही विकल्प हैं: सरकारी नौकरियाँ और अलगाववादी संगठन. सरकारी नौकरियाँ कम हैं तथा उनका मिलना आसान नहीं है और अलगाववादी संगठनों में काम करना मौत को बुलावा देना है.

हाल ही में मणिपुर में हुई निर्दोष हिंदी-भाषी मजदूरों की निर्मम हत्या से वहाँ का स्थानीय समुदाय भी कतई सहमत नहीं है. लूट-खसोट की व्यवस्था और जातीय वैमनस्य की राजनीति के फलस्वरूप आए दिन नए-नए अलगाववादी संगठनों का जन्म हो रहा है. इन संगठनों में ज्यादा से ज्यादा धन कमाने की होड़ लगी है और इनके लिए तत्काल नाम कमाने और अपना दबदबा बनाने के लिए निरीह हिंदी-भाषी मजदूरों से अच्छे सॉफ्ट टारगेट क्या हो सकतें हैं. पूर्वोत्तर में अलगाववाद अब रोजगार देने वाले असली उद्योगों की अनुपस्थिति में कुटीर उद्योग का रुप ले चुका है.

वहीं दूसरी ओर कुछ बड़े समुदाय अन्य छोटे समुदायों की सांस्कृतिक और पारंपरिक विरासत को हड़पने में लगे हैं. यह अपने प्रकार का पूर्वोत्तर का उपनिवेशवाद है. उदाहरणस्वरूप कूकी समुदाय को कोई भी पूर्वोत्तर राज्य (नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम और असम) साफ तौर पर अपने राज्य का मूल निवासी मानने को तैयार नही है. ये छोटे समुदाय स्वयं को असुरक्षित और बड़े समुदायों द्वारा ठगा महसूस करते हैं. असम के करबी,दिमासा और चाय-बगान एवं मणिपुर के कूकी समुदायों में उपजा उग्रवाद इसी व्यवहार की प्रतिक्रिया है. भारत सरकार को राज्य सरकारों के माध्यम से इन समुदायों के अधिकारों और विकास को सुनिश्चित करवाना होगा. हमें यह समझना होगा कि पूरे पूर्वोत्तर प्रदेश का सतत विकास तभी संभव है जब सभी छोटे-बड़े समुदायों का विकास समग्र रुप से हो.

चाहे हम लाख दुहाई दें कि मुख्यधारा का भारतीय समाज पूर्वोत्तर के समाज (समाजों) को अपना समझता है, पर सच्चाई यह है कि आमतौर पर इस दिशा में कोई सार्थक सामाजिक पहल अभी तक नहीं हुई है. पूर्वोत्तर का समाज एक संवेदनशील समाज है और उसकी अपनी अस्मिता है. सरकार ने वहाँ भारतीयता का झंडा लहराने का तो काम चालू किया है पर मेनलैंड (मुख्य-भूमि) में पूर्वोत्तर के बारे में संवेदनशील और सकारात्मक दृष्टिकोण के निर्माण की कोई पहल नहीं की है. भारत की सामासिक संस्कृति का सुहावना ढ़ोल तो सब बजाना चाहते हैं पर इसके लिए कुछ ठोस कदम शायद ही उठाए जा रहे हैं.

हम पूर्वोत्तर में हिंदी का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं. यह भारत की एकता और अखंडता के लिए एक जरुरी कदम है. परन्तु उस हिंदी भाषी को यह कौन बताएगा कि मणिपुर के लोग चीनी नहीं मैतेइ भाषा बोलते हैं और नागालैंड में 34 अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती हैं. हिंदी को सांस्कृतिक समन्वय की भाषा बनना होगा. यह बात कितने लोग जानते है कि अरूणाचल प्रदेश में विभिन्न समुदायों के बीच हिंदी ही सम्पर्क भाषा का काम करती है. हिंदी पट्टी का समाज इतना आत्ममुग्ध है कि उसे दक्षिण भारत की हर भाषा *अगड़म-बगड़म* और पूर्वोत्तर की भाषाएँ *आउ-माउ-चाउ* ही सुनाई पड़ती हैं. हिंदी भाषियों को पूर्वोत्तर के लोगों की हिंदी में मीन-मेख निकालना छोड़कर इस बात पर गर्व करना चाहिए कि वे उनकी भाषा बोल रहे हैं. हिंदी पट्टी के समाज को अपने बिग-बुली के अवतार से बाहर निकल कर बड़े भाई की भूमिका निभानी होगी, तभी पूर्वोत्तर हमें भी अपनाएगा.

मुख्यधारा के समाज की इसी स्वार्थपरकता और आत्म-मुग्धता के इतिहास ने पूर्वोत्तर में अलगाववाद और उससे जुड़े लूट-खसोट के कुटीर उद्योग के जन्म और उसके निरंतर विकास का रास्ता बनाया है. असम, नागालैंड और मणिपुर इस विध्वंसकारी प्रकिया के ज्वलंत उदाहरण है. इन प्रदेशों में तो यह तंत्र इतना संगठित और व्यवस्थित हो गया है कि इस पर रोक लगाना क्षीर सागर से अमृत निकालने के समान.

इस तथ्य पर हमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि कुछ विदेशी विघटनकारी शक्तियों के प्रश्रय से ही पूर्वोत्तर में अलगाववाद को हवा दी जा रही है. परन्तु घर के कलह का समूचा दोष पड़ोसियों पर मढ़ने से पहले हमें अपनी गलतियों का आत्मविश्लेषण करना होगा.

पूर्वोत्तर में ईसाई मिशनरियों के कार्य को हमें हमेशा संदेह की दृष्टि से देखना बंद करना होगा. हमें उनके कार्य के सकारात्मक पहलुओं पर भी ध्यान देना होगा. वे विदेशी ईसाई मिशनरी ही थे जिन्होंने पूर्वोत्तर की विषम जातीय प्रतिस्पर्धा और हिसंक संघर्षों के बीच शिक्षा और धर्म-प्रचार के माध्यम से पूरे समाज को एक सूत्र में बांधा था. पूर्वोत्तर के समाज की विभिन्न जातीय अस्मिताओं के ऊपर उनकी एक धार्मिक अस्मिता को स्थापित करने का काम इन्हीं मिशनरियों ने किया है. 20वीं शताब्दी तक के वे दिन ज्यादा पुराने नहीं हैं जब आए दिन पड़ोसी समुदायों और गाँवों के बीच ज़मीन तथा औरतों के लिए हिंसक युद्ध लड़े जाते थे.

वर्तमान भारत को धार्मिक सहिष्णुता, धर्म निरपेक्षता और विविधता के अपने जन्मजात गुणों को ध्यान में रखते हुए इस समस्या का समाधान खोजना होगा. हमें पूर्वोत्तर के समाज को यह विश्वास दिलाना होगा कि भारत उनका है और साथ ही हमें पूर्वोत्तर की स्वतंत्र अस्मिताओं को भारतीयता की अस्मिता के अंतर्गत स्वीकारना होगा. भारत हमेशा से सामासिकता का चौराहा रहा है और यही हमारी शक्ति है. दूसरी ओर हमें एक साथ मिलकर वहाँ पनप रहे भ्रष्टाचार और अमीरों-गरीबों के बीच बढ़ती खाई को पाटने का काम भी करना होगा. भारतीय सेना द्वारा पूर्वोत्तर में चलाए जा रहे समाजोन्मुख कार्यक्रम इस दिशा में सराहनीय प्रयास हैं.

दक्षिण एशिया में भारत निस्संदेह एक महाशक्ति है. इस क्षेत्र का आर्थिक-सैन्य मुखिया होने के नाते भारत का अपने पड़ोसी देशों में चल रही दुरव्यवस्था और आर्थिक बदहाली से आँखें मूंदे रखना समझदारी नहीं. बांग्लादेश में फैली आर्थिक बदहाली और बेकारी ही बड़ी संख्या में वहाँ के लोगों को रोजी-रोटी की तलाश में भारत विशेषकर पूर्वोत्तर में पलायन के लिए मजबूर कर रही है. शुरू-शुरू में ये सस्ते बांग्लादेशी श्रमिक हमें भलें मुनाफे का सौदा लगें, परन्तु कालांतर में यही शरणार्थी समुदाय हमारे गले की हड्डी बन बैठेगा. बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान में ही इस समस्या का स्थाई निदान है. भारत को अपने राजनीतिक और आर्थिक दबदबे का उपयोग बांग्लादेश, नेपाल, बर्मा जैसे देशों के विकास में करना होगा.

पूर्वोत्तर भारत में सरकारी अनुदान वितरण से आगे जा कर हमें विकास योजनाओं को लागू करवाने की फूलप्रूफ़ प्रणाली का निर्माण करना होगा. भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के बीच सांस्कृतिक और सामाजिक संबंध सदियों से प्रगाढ़ रहा है. पूर्वोत्तर तो उस श्रृंखला का भारतीय प्रवेश द्वार है. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की नई लुक-ईस्ट पॉलिसी तो भारतीय इतिहास के अध्यायों में पहले से ही विद्यमान रही है. आवश्यकता है तो उस परंपरा को पुनर्जीवित करने की. पूर्वोत्तर का युवा वहाँ के हिंसक इतिहास से उकता गया है. उसे सहज, उन्मुक्त, और आधुनिक भारत से जुड़ने का मौका तो दीजिए !